सिक्कों की खनक

सत्ताधारी पार्टी, कुछ ऐसे कारणों से जिनके बारे में उसे ही पता होगा, मीडिया आयोग की नियुक्ति नहीं करना चाहती। क्या ऐसा जैन बंधुओं के प्रभाव के कारण है जिन्हें बहुत से सवालों का जवाब देना होगा। जैन बंधुओं को यह समझना होगा कि एक लेखक को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार इसलिये दिया गया था ताकि वह बिना किसी भय या पक्षपात के कुछ भी कह सके। अगर मालिक ही तय करने लगे कि कर्मचारी क्या कहेंगे तो यह अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर गंभीर प्रश्न खड़ा करता है। लोकतंत्र में, जहां स्वतंत्र सूचनायें स्वतंत्र प्रतिक्रियाओं को बढ़ावा देती हैं, वहां प्रेस को कुछ लोगों की सनक पर नहीं छोड़ा जा सकता। प्रतिबंधित प्रेस, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की संवैधानिक गारंटी को नष्ट कर सकता है।

अमरीकी पाक्षिक, न्यू यॉर्कर ने टाइम्स ऑफ इंडिया ग्रुप के संचालक जैन बंधुओं-समीर और विनीत के बारे में जो कुछ भी बताया है, वह बहुत सी लोगों को पहले से ही पता है। इसमें न्यू यॉर्कर का योगदान बस इतना है कि उसने शक-शुबहा दूर कर दिया और इस बात को पक्का कर दिया कि देश के सबसे बड़े मीडिया मुगल इस बात में यकीन करते हैं कि समाचार कॉलमों के मामले में कुछ भी पवित्र नहीं है और एक तय कीमत पर उन्हें बेचा जा सकता है, क्योंकि उनके लिये अखबार उसी तरह एक बिकाऊ माल है, जैसे देह पर मले जानेवाले सुगंधित पाउडर या टूथपेस्ट।

एक पाठक यह जानकार हतप्रभ हो सकता है कि जिस खबर को वह उत्सुकतापूर्वक पढ़ता है उसे पैसा देकर छपवाया गया है। उसकी कुंठा और लाचारी और बढ़ जाती है, क्योंकि उसे इस बात का पता नहीं चलता कि इस कहानी का कौन-सा हिस्सा खबर है और कौन-सा हिस्सा फर्जी। संपादकीय मानकों का यह उल्लंघन जैन बंधुओं को परेशान नहीं करता, क्योंकि वे इस उद्योग को पैसा कमाने के एक कारोबार की तरह इस्तेमाल करते हैं। वे इस बात से गर्व महसूस करते हैं कि उन्होंने नैतिकता को तार-तार करके चीथड़ों में बदल दिया है और इसके बावजूद उनका अखबार भारत में अव्वल दर्जे का है। इतना ही नहीं, वे शायद दुनिया भर में किसी भी दूसरे अखबार से कहीं ज्यादा पैसा कमाते हैं। महान रूपर्ट मर्डोक का साम्राज्य भले ही टाइम्स ऑफ इंडिया से 20 गुना ज्यादा बड़ा है, फिर भी उसका मुनाफा इससे कम है।

अपने नौ-पृष्ठ के लेख में, उक्त पाक्षिक यह वर्णन करता है कि जैन बंधु पत्रकारिता को सिर्फ ''एक जरूरी सिरदर्द की तरह लेते हैं और विज्ञापनदाताओं का असली ग्राहकों की तरह अभिनंदन करते हैं।'' यह आश्चर्य की बात नहीं है कि टाइम्स ऑफ इंडिया अपनी प्रिंट लाइन में अपने संपादकों का नाम नहीं छापता, क्योंकि दरअसल अखबार का कोई संपादक है ही नहीं। उन्होंने नहीं, किसी और ने बहुत पहले कहा था कि अखबार में लिखना विज्ञापनों के पिछले पन्ने पर लिखने के समान है। जैन बंधु इस तथ्य और इसकी भावना दोनों को अमल में लाते। ''हम जानते थे कि हम सुधी श्रोताओं को एकत्रित करने के कारोबार में लगे हैं। इससे पहले, हम सिर्फ विज्ञापन के लिये स्थान बेचते थे।'' न्यू यॉर्कर के उक्त लेख में प्रत्यक्ष रूप में जैन बंधुओं का कोई उद्धरण मौजूद नहीं है। शायद उन्होंने साक्षात्कार देने से इंकार कर दिया हो।

फिर भी, उनके कुछ पिट्ठू, शुक्र है कि उनमें से कोई भी संपादकीय खेमे का नहीं है, उनके दिमाग में झांकने का अवसर प्रदान करते हैं। एक पिट्ठू कहता है ''संपादकों में 80-80 शब्दों के लंबे वाक्य बोलते हुए, मंच से आडम्बरपूर्ण और कानफोडू भाषण देने की प्रवृति पायी जाती हैं।'' विनीत जैन इस बारे में एकदम स्पष्ट हैं कि अखबार के कारोबार में सफल होने के लिये आपको संपादकों की तरह नहीं सोचना चाहिये। ''अगर आप सम्पादकीय विचार के हैं, तो आपके सभी फैसले गलत होंगे।'' यह सच है कि जैन बंधुओं ने अखबार को ''समाचारों'' के कागजी कारोबार में तब्दील कर दिया है। परन्तु ऐसा इसलिये, क्योंकि उन्होंने अपने अखबार को सहेजने की कला में महारत हासिल कर ली है, उसे सस्ता कर दिया है और उसे पीत पत्रकारिता के स्तर तक नीचे गिरा दिया है। फिर भी, वे इसकी परवाह नहीं करते, क्योंकि वे एक पेशे को व्यवसाय बनाने में माहिर हैं। उनके लिये संपादक एक दिहाड़ी मज़दूर से भी सस्ते होते हैं। मुझे एक पुरानी घटना याद आ रही है, टाइम्स ऑफ इंडिया के तत्कालीन संपादक गिरिलाल जैन ने एक दिन मुझे फोन करके पुछा कि क्या आप अखबार के मालिक अशोक जैन से, जिनसे आपकी अच्छी जान-पहचान है, इस बारे में बात कर सकते हैं कि वे अपने बेटे समीर जैन को मेरे ऊपर दबाव डालने से मना करें। गिरी ने कहा कि अशोक जैन की प्रथमिकताएं चाहे जो भी रही हों, वे उनके साथ अच्छा व्यवहार करते थे, लेकिन समीर का रवैया अपमानजनक था। अशोक ने जवाब में कहा कि वह चाहे तो कितने भी गिरिलाल खरीद सकता है, लेकिन वह एक भी ऐसा समीर नहीं ढूंढ सकता जिसने उसके मुनाफे को आठ गुना बढ़ा दिया है। इन्दर मल्होत्रा ने एक बार मुझे बताया कि समीर कैसे वरिष्ठ पत्रकारों को संस्था के द्वारा भेजे जाने वाले काड्र्स पर अतिथियों के नाम लिखने के लिए अपने कमरे के फर्श पर बैठने के लिये मज़बूर करता था।

जैन बंधुओं ने पैसे कमाने के अपने कारोबार में अखबार को ऐ बकवास गप्पबाजी तक सीमित कर दिया है। पत्रकारिता उनके कारोबार के लिये सुविधाजनक है। इसे सुनिश्चित करने के लिए, न्यू यॉर्कर के अनुसार यह अखबार ''हत्याओं और बलात्कार और दुर्घटनाओं और सुनामी की खबरों में भी आशावाद की एक छौंक लगाने का प्रयास करता है और युवाओं से प्रेरक संवाद कायम करने को प्राथमिकता देता है। गरीबी से सम्बन्धित खबरों को कम प्राथमिकता दी जाती है।''

पिछले कुछ सालों में कारोबार और प्रबंधन विभागों को ज्यादा महत्त्व मिलने लगा है। मैं सोचता हूं कि आपातकाल के दौरान प्रेस का दब्बू रुख इसकी एक वजह है जिसके चलते व्यावसायिक हितों को ज्यादा महत्त्व मिलने लगा है। जब यह देखा गया कि सम्पादन का काम करने वालों ने बिना कोई संघर्ष किये हथियार डाल दिया, तो प्रबंधकों ने उन्हें उस पूर्व-प्रतिष्ठित स्थान से नीचे गिराना शुरू कर दिया जिस पर पहले उनका कब्जा था। अब वे करोबारी पक्ष के ताबेदार की भूमिका में हैं। हम लोग जरूर करोबारी प्रेस नोट कूड़ेदान में फेंक दिया करते थे।

चूंकि कारोबार और सम्पादकीय के बीच का रिश्ता धुंधला पड़ चुका है, इसलिये स्वतंत्र अभिव्यक्ति सीमित होती जा रही है और रोजबरोज होने वाली दखलअंदाजी बढ़ती जा रही है। यह एक खुला रहस्य है कि प्रबंधन या कारोबारी पक्ष अपने आर्थिक और राजनीतिक हितों के अनुसार एक विशेष लाइन निर्धारित करता है। यह ज्यादा महत्वपूर्ण नहीं है कि बहुत से मालिक राज्य सभा के वर्तमान सदस्य हैं, बल्कि यह तथ्य ज्यादा महत्त्वपूर्ण है कि वे कृपादृष्टि पाने के लिये राजनीतिक पार्टियों से सम्बन्ध बढ़ाते हैं। पार्टियों या संरक्षकों के प्रति उनका आभार और उनकी निकटता अखबारों के स्तम्भों में प्रतिबिम्बित होती है। यही सम्बंध अब खुद को ''पैसा लेकर छापी गयी खबरों'' में तब्दील कर चुके हैं। खबरों को इस ढंग से लिखने की मांग की जाती है जिससे एक व्यक्ति विशेष या खास दृष्टिकोण को समाचार स्तम्भों में व्यक्त किया जा सके। पाठक कभी-कभी ही पकड़ पाते हैं कि कब सूचनाओं में प्रोपगेंडा घुसा दिया जाता है या कब समाचार स्तम्भों की विषय वस्तु में विज्ञापनों को ठूंस दिया जाता है।

इसलिये, अब वक्त आ गया है कि अखबारों, टेलिविजन और रेडियो के सभी पहलुओं की जांच-पड़ताल करने के लिये एक मीडिया आयोग की स्थापना की जानी चाहिये। 1977 में जब आखिरी प्रेस आयोग नियुक्त किया गया था, तब उसमें टेलीविजन शामिल नहीं था, क्योंकि उस वक्त भारत में इसका अस्तित्व नहीं था। दूसरी चीजों के अतिरिक्त, मीडिया के सभी पहलुओं की जांच पड़ताल होनी चाहिये, मालिकों और संपादकों, पत्रकारों और मालिकों के बीच के सम्बन्धों की जांच होनी चाहिये, जिन्होंने वर्किंग जर्नलिस्ट एक्ट (कार्यरत पत्रकार कानून) की आड़ में ठेका व्यवस्था लागू की। साथ ही, टीवी और मुद्रित समाचार माध्यम के बीच संयोजन की भी जांच होनी चाहिये। आज कोई भी अखबार किसी टेलीविजन चैनल या रेडियो का मालिक हो सकता है। एक ही घराने द्वारा परस्पर विरोधी मीडिया का स्वामित्व हासिल करने पर कोई रोक नहीं है। इससे एकाधिकारी संघों को बढ़ावा मिलता है जो अंतत: प्रेस की स्वतंत्रता पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है।

सत्ताधारी पार्टी, कुछ ऐसे कारणों से जिनके बारे में उसे ही पता होगा, मीडिया आयोग की नियुक्ति नहीं करना चाहती। क्या ऐसा जैन बंधुओं के प्रभाव के कारण है जिन्हें बहुत से सवालों का जवाब देना होगा। जैन बंधुओं को यह समझना होगा कि एक लेखक को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार इसलिये दिया गया था ताकि वह बिना किसी भय या पक्षपात के कुछ भी कह सके। अगर मालिक ही तय करने लगे कि कर्मचारी क्या कहेंगे तो यह अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर गंभीर प्रश्न खड़ा करता है। लोकतंत्र में, जहां स्वतंत्र सूचनायें स्वतंत्र प्रतिक्रियाओं को बढ़ावा देती हैं, वहां प्रेस को कुछ लोगों की सनक पर नहीं छोड़ा जा सकता। प्रतिबंधित प्रेस, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की संवैधानिक गारंटी को नष्ट कर सकता है।

(कुलदीप नैयर पूर्व सांसद तथाब्रिटेन में भारत के उच्चायुक्त)

देश में आर्थिक उदारीकरण की हवा चलने के बाद बाजारवाद बहुत हावी हो गया है। इसने भारतीय मीडिया संगठनों के गुणसूत्रों (डीएनए) को बदल कर रख दिया है।

- हामिद अंसारी,
उपराष्ट्रपति, भारत

दिल्ली में बढ़ते महिला अपराध

दिल्ली में दिल दहला देने वाली दामिनी के इस घटना के बाद देश-भर में उत्पन्न जनाक्रोश के क्या मायने है ? क्या वे समाज में बलात्कार जैसे घृणित अपराध को जड़ से खत्म करवाना चाहते हैं ? या सिर्फ दोषियों को सख्त सजा दिलाने के पक्ष में हैं। नेशनल क्राइम ब्यूरों के आंकड़ों के मुताबिक चार महानगरों में दिल्ली की महिलायें सबसे ज्यादा असुरक्षित हैं। मुंबई महिलाओं के लिये सुरक्षित शहर नहीं है, लेकिन वहां दिल्ली के मुकाबले अपराध की घटनाएं एक तिहाई ही हैं। कोलकाता का तीसरा नम्बर है जिबकि चेन्नई में महिलाओं के प्रति अपराध की सबसे कम घटनाएं सामने आई हैं। दिल्ली में महिलाओं के खिलाफ अपराधों की संख्या सबसे ज्यादा है।

दामिनी तो सो गई, पर लोगों को जगा गई, परन्तु वह सोई नहीं है गीता में श्री कृष्ण ने अजुर्न से कहा है कि आत्मा तो अमर है न उसे आग जला सकती है, न पानी गला सकता है, न हवा सुखा सकती है, जैसे मनुष्य पुराने वस्त्र को त्याग कर नया वस्त्र धारण करता है उसी तरह से आत्मा भी पुराने शरीर को छोड़कर नया शरीर धारण करता है। और दामिनी की आत्मा तो सभी लोगों के साथ जुड़ गई है। पर ऐसा लग रहा है कि, शायद हमारे देश के नेता अब तक नहीं जाग पाएं हैं। यहां देश की राजधानी तो हर तरफ तेजी से तरक्की करती आ रही है और युवा वर्ग के लिये दिल्ली कैरियर के लिये बहुत ही खास जगह है। और यहां सुरक्षा की सही व्यवस्था नहीं की गई तो ऐसी स्थिती में देश के बारे में क्या सोचा जा सकता है ?

दिल्ली देश की राजधानी है, पूरे देश की शासन व्यवस्था का केन्द्र है और यहां संसद में दिन-रात देश की आंतरिक सुरक्षा और आतंकवाद से लड़ने के लिये लम्बी-चौड़ी बहसे होती है। लेकिन इसी राजधानी दिल्ली को देश के सबसे असुरक्षित शहरों में से एक है। यहां आये दिन महिलाओं पर घिनौने अत्याचार होते हैं। दिल्ली के सड़कों पर, अस्पतालों में, स्कूलों, कॉलेजों में यहां तक की अपने ही घरों में भी महिलाएं सुरक्षित नहीं है। उसी संसद के साए मे, जहां से न्याय-अन्याय कानून और महिला सशक्तिकरण के बयान जारी होते हैं-लड़कियां हर पल भय और आतंक के साए में जीती है। क्या हमारा देश कभी तरक्की कर पायेगा ? दामिनी निकली आगे

दामिनी के अंतिम संस्कार के वक्त न जाने कितने लोगों की भीड़ थी, किन्तु इन्हीं लोगों में से नाम मात्र के भी उस वक्त आते जब वो मदद के लिये चीख रही थी तो शायद आज दामिनी इस दुनिया में होती।

बढ़ने के लिए, कुछ करने के लिये पर कुचल दी गई, इन दरिंदों के हाथों। इसी तरह और भी तमाम लड़कियां आगे बढ़ेगी तो पता नहीं क्या होगा ? ऐसी स्थिति में हमारे देश में लड़कियां कितना तरक्की कर पाएगी ?

दामिनी गैंगरेप के बाद भी हमारे देश में ऐसे करनामों पर फूलस्टॉप नहीं लगी। बल्कि आये दिन ये शिकायतें बढ़ती ही जा रही है क्योंकि, दरिंदों को सज़ा नहीं मिल पा रही है सरकार इसके लिये जिम्मेवार है। हमारे शास्त्र ने एक पराई स्त्री को सदा ही मां, बहन की दृष्टि से ही देखने की शिक्षा दी गई है और अगर कोई दरिंदा एक राह चलती युवती को अपने हवस का शिकार बनाता है तो उसे मृतयुदंड का भागीदार होना ही चाहिए। पर हमारी सरकार ने यहां भी कोई खास कदम नहीं उठाया जिससे इन भेड़ियों को बढ़ावा मिल रहा है। और हमारे देश की स्थिति शर्मनाक हो चुकी है। जब कि देश की राजधानी दिल्ली की व्यवस्था सबसे कड़ी होनी चाहिए वहां का ये हाल है तो पूरे देश के मुल्यांकन का क्या नतीजा निकलेगा। लड़कियां अपने करियर को बढ़ावा देने के लिए, या किसी नौकरी पेशा की वजह से घर से बाहर निकलती है तो उनके घर आ जाने तक उन्हें और उनके परिवार वालों को यह भय बना रहता है कि वो सकुशल तो लौट आयेगी। जब लड़कियां भयभीत रहेगी तो क्या तरक्की कर पायेगी ? कितने आश्चर्य की बात है कि एक तरफ दुनिया में भारत के संस्कारों और संस्कृति की दुहाई दी जाती है, जहां पर राम और कृष्ण मनुष्य के रूप में अवतार लिये हैं, हमारे देश में जहां देवी के रूप में सीता और पार्वती की पूजा होती है उसी देश में महिलाएं घर से बाहर निकलने से डरती हैं।

राष्ट्रपति प्रणव मुखर्जी के बेटे ने तो युवा वर्ग को यह भी कहा कि युवा रात को मॉल और डिस्कोथेक में जाते हैं, तो सरकार क्यों नहीं इन तमाम माल और डिस्कोथेक पर पावंदी लगा देती है। उन्हें तो हर वो कदम उठाना चाहिए कि जिससे हमारे देश का भविष्य उज्वल हो सके, क्योंकि देश की बागडोर सरकार के हाथ में है।

गृह मंत्री और प्रधान मंत्री ऐसा कहते हैं कि जब मैं दामिनी के बारे में सोचता हूं तो मुझे अपनी बच्ची का चेहरा याद आता है, क्योंकि मैं भी तीन बच्चियों का पिता हूं; लेकिन इनकी बेटियां दामिनी की तरह असुरक्षीत सड़कों पर नहीं चलती। बाद में दामिनी के मृत्यु के पश्चात दिखावे के लिये हमारी सरकार ने लाश को सिंगापुर के लिये रवाना जरूर कर दिया, ताकि लोग यह कह सकें, कि हमारी सरकार ने तो अपनी तरफ से पूरी कोशिश की। वैसे भी सरकार नाम ऊंचा करने में बहुत पहले से ही आगे रहा है। दामिनी के अंतिम संस्कार के वक्त न जाने कितने लोगों की भीड़ थी, किन्तु इन्हीं लोगों में से नाम मात्र के भी उस वक्त आते जब वो मदद के लिये चीख रही थी तो शायद आज दामिनी इस दुनिया में होती।

- अर्पिता झा